आठवें दशक की मराठी आत्मकथा

डॉ. वृषाली मांद्रेकर
असो. प्रोफेसर हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय

मराठी आत्मकथा लेखन की परंपरा बहुत ही समृद्ध एवं सशक्त है, जिसे समृध्द करने में सिर्फ दलित साहित्यकारों की ही भूमिका नहीं रही हैं बल्कि राजनीति, संगीत, नृत्य, सिनेमा आदि सामाजिक क्षेत्रों में से जुड़े महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। फिर भी दलित लेखक-लेखिकाओं ने अपने महत्त्वपूर्ण लेखन से मराठी आत्मकथा को एक नई ऊँचाई दी।

प्रस्तुत लेख में सभी आत्मकथाओं का मूल्यांकन करना संभव नहीं होगा, इसलिए मैं यहाँ कतिपय महत्त्वपूर्ण आत्मकथाओं का उल्लेख करना चाहूँगी, जैसे कि 'रामनगरी', 'अनन्तिक', 'बलुतं', 'आठवणीचे पक्षी', 'उपरा' आदि।

राम नगरकर की 'रामनगरी' एक अनूठी आत्मकथा है जिसका कथ्य कुछ इसप्रकार है। वस्तुतः लेखक रामनगरकर मूलतः जाति का नाई है। नगरकर अपने जीवन में बाल काटने का परंपरागत व्यवसाय छोड़कर पोस्ट ऑफिस में 'पॅकर' का कार्य करने लगता है। वे दिन में नौकरी करते थे और इसके अतिरिक्त अन्य कार्यों में भी उनकी रूचि थी। रात में पढ़ते थे, कलामंडली में अभिनय करते थे। अभिनय की उत्कटता तथा अन्य कार्यों से उनके जीवन में अनेक परिवर्तन आ गए थे। अपनी निजी जीवन की इन घटनाओं का चित्रण उन्होंने बहुत ही सहजता एवं सहृदयपूर्ण रूप से किया है। पोस्ट ऑफिस की डॉक्यूमेंटरी बनाने एवं उसमें का काम करने का मौका मिलनेपर उनकी दुनिया का रंग बदल गया।

आज इस जगत् में राम नगरकर लोकनाट्य के अभिनयकर्ता के रूप में परिचित है। इसप्रकार से उन्होंने न अपना पारंपारिक व्यवसाय निभाया नही नौकरी में टिके रहे। बचपन से उन्हें गाने का शौक था, अभिनय में रूचि थी जिसकी वजह से एक आर्टिस्ट बनकर ही जीना पसंद किया।

अन्य आत्मकथाओं में भी जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों एवं भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। येह आत्मकथायें पाठक के हृदय को झंझोड़कर रख देती हैं। इतना ही नहीं यह कहना उचित होगा कि सामाजिक स्थितियों से उपजी अन्याय अत्याचार की जीवंत छबियाँ पाठक के हृदय को विगलित कर उन स्थितियों पर सोचने के लिए मजबूर करती हैं। दगडू मारूती पवार उर्फ दया पवार की आत्मकथा (25 दिसंबर 78) प्रकाशित हुई और मराठी पाठक वर्ग भारतीय समाजव्यवस्था की देन के रूप में मिला हुआ उनकी वेदनाओं के 'बलुतं' (मजदूरी) से परिचित हुआ। यह कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस आत्मकथा ने मराठी पाठक वर्ग को सिर से पाँव तक हिला दिया। गाँव में महारों के कुछ काम परंपरा से करने होते हैं, जैसे गाँव में अंमलदारों के घोड़ों के सामने दौड़ना, उनके जानवरों की देखभाल करना, घास-पानी देना, दौड़ी पीटना, किसी के मरने पर गाँव-गाँव में जाकर समाचार देना, मृत जानवरों को खींचकर ले जाना आदि। यह काम करने के बाद उनको ध्यान दिया जाता हैं जिसे 'बलुतं' कहते हैं।

महारों के जीवन के अनेक संदर्भों में स्वानुभूति के कारण वास्तविकता एवं पैनापन आया है। लेखक स्वयं इन विभिन्न समस्याओं से गुजरता है जिसके कारण स्वरूप यह घटनायें पाठक को उद्वेलित करती हैं। इस आत्मकथा में अपने जीवन, मृत जानवरों को विभाजित करना, अंधश्रद्धाओं का परिणाम, महारों की अस्पृश्यता के कारण की गयी उपेक्षा, नारी-जीवन की व्यथा आदि का सटीक एवं पारदर्शी चित्रण किया गया है।

उन्होंने अपनी बचपनावस्था का वर्जन करते हुए लिखा है - "मेरी बाल्यावस्था कभी गांव में तो कभी शहर में गुजर गयी। मेरा एक पांव गाँव में तो दूसरा शहर में-ऐसा किसीने कहा तो गलत नहीं होगा। आज भी पूर्ण रूप से शहर या गाँव में मैं नहीं रहता, मेरी मानसिकता ही ऐसी विखंडित जरासंघ जैसी दो दिशाओं में फेंकी हुई है (पृ-4)। उनके चालीस सालों के इस जीवनपट में इसीलिए शहरी एवं गाँव के महारों के जीवन की गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है। उनकी कभी-कभी 'येसकर पाळी' (गाँव में हर घर के दरवाजे पर जाकर अन्न माँगना) आती थी, उस समय उन लोगों को किसी ने भी ताजी रोटी खाने के लिए नहीं दी ज्यादातर बासी रोटी ही मिलती थी। (पृ.51) .

उस समाज में अंधश्रद्धाओं का भी बोलबाला था - डोर देना, भविष्य देखना, देवी माता की सवारी आना, बभूति लगाना, करणी करना, खंडोबा के लिए बकरी की बलि चढ़ाना आदि।

गाँव में महारों की उपेक्षा होती थी। उनपर हर तरह के अत्याचार होते थे, वह सिर्फ उच्च वर्ण के लोगों से ही नहीं बल्कि 'चमार' दलित होते हुए भी महारों को अपनी पंक्ति में बैठने नहीं देते थे।

इन स्थितियों में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के कारण बदलाव आया। उनको अपने व्यक्तित्व की पहचान हुई - 'स्वयं में कुछ कमी नहीं है, गाँव के उस कोंडवाडे से बाहर आना चाहिए और इसलिए पढ़ना पड़ेगा, शहर के ब्राह्मण, बनिया के बच्चों को भी हम पढ़ने में पीछे छोड़ सकते हैं यह मैंने अनुसंधान किया" - इस परिवर्तन के बाद उन्होंने मृत जानवरों का मांस खाना, जानवरों की खाल निकालना छोड़ दिया। नारी जीवन की पीड़ा त्रासदी और उनकी की गयी अवहेलना हर दम दृष्टिगोचर होती है। गरीबी और अज्ञान के कारण इन लोगों ने हमेशा नारी वर्ग पर जुल्म ही ढायें हैं।

इसप्रकार 'बलुतं' आंचलिकता से परिपूर्ण दलित आत्मकथा है। इसमें चित्रित विभिन्न व्यक्तिरेखाओं, स्वाभाविक पहलुओं का सटीक वर्णन लेखक ने किया है, इसमें उद्धृत बोली भाषा इस आत्मकथा को आंचलिकता की श्रेणी में लाने में सफल हुई है उदाहरण के लिए 'सबूर', 'शीमराब', 'डल्ली-डुल्ली', 'सागुती', 'पड', 'वशाट', 'चिलबार', 'चिनपार', 'गुडसा', चाण्या आदि शब्दों का प्रयोग दलितों की भाषा को ही उजागर करते है।

वर्ण व्यवस्था, जातिव्यवस्था ने समाज में ऐसे पर फैलाये हैं कि जिससे दलितों को हमेशा सभी सुविधाओं से अलग रहना पड़ा है। ऐसे ही उपेक्षित दलित प्र.ई सोनकांबई को गरीबी और अस्पृश्यता के कारण असंख्य यातनायें सहन करनी पड़ी - उनका यह अनुभूत दुःख, शोषण 'आठवणीचे पक्षी' (27 जनवरी 1979) इस आत्मकथा में अभिव्यक्त हुआ है।

बचपन में माँ-बाप की मौत हो जाने के बाद बड़ी बहन ने पाल-पोसकर बड़ा किया। वहाँ काम करने की मजबूरी, जीवन की त्रासदी, महार-माँगों के जीवन में मृत जानवरों का मांस पाने के लिए होनेवाले झगड़े, रोगी जानवरों का मांस खाकर मरनेवाले लोग, काम करने के बाद भी ऊपर से पत्तल पर डालते

हुए मिट्टी में पड़ा हुआ खाना खाने को लाचार कुत्ते से बदतर जिंदगी, मरे हुए कुत्तों को दूर ले जाकर फेंकने की जबरदस्ती आदि बहुत सी ऐसी घटनायें हैं, जिनसे जब हम रूबरू हो जाते हैं तब कभी-कभी मन घृणित हो जाता है।

गरीबी इतनी कि न कभी पहनने को कपड़े मिले न कभी चप्पल - 'उन्होंने मेट्रिक पास होने तक चप्पल नाम की कोई चीज नहीं देखी।'...होली खेलने के बाद फेंके हुए रंगीन कपड़ों से अपने बदन को सर्दी से बचाते रहे।" गाँव में हमेशा उनको हेय दृष्टि से ही देखा गया। इतना ही नहीं, पढ़ंलिखकर प्राध्यापक बनने के बाद भी महारों के प्रति उपेक्षा, अवहेलना कम नहीं हुई। उन्होंने अपने जीवन के अनेक त्रासद प्रसंगों का वर्णन किया है। बहन के यहाँ आश्रित रहकर उन्होंने काम करते हुए, परिवारवालों की धौंस सहते हुए, अनेक कष्टों का सामना करते हुए मैट्रिक तक की परीक्षा पास की। औरंगाबाद में जाने के लिए लोगोंने पैसा इकट्ठा क़रके उनको घोर कष्टों में जीने के बाद पढ़ाई पूरी की और कॉलेज में व्याख्याता के रूप में काम करने लगे। यहाँ भी उनकी संत्रास, पीड़ाग्रस्त जिंदगी खत्म नहीं हुई। ब्राह्मण शिक्षक के साथ बैठकर खाना खाने के बाद माली अपना आक्रोश अभिव्यक्त करता है - 'साहब, यह परल्या (लेखक) कुछ पढ़ा है, तो उत्तम लोगों की पंगत में बैठकर खाना खाएं यह अच्छा नहीं है, वह अपने स्तर तक ही रहे। (पृ.65) इसीप्रकार ऊँटवाले का व्यवहार भी महार जाति का पता लगने पर बदल जाता है। ऐसी अनेक घटनाओं के माध्यम से लेखक ने समाज तथा महारों के प्रति समाज का दृष्टिकोण और उससे उपजी हुई पीड़ाजन्य अनुभूतियों का सटीक वर्णन किया है।

यह आत्मचरित्र विभिन्न व्यक्तिरेखाओं से, अनुभवजन्य प्रसंगों से बहुत ही उत्कृष्ट बन पड़ा है। इस आत्मकथा के संदर्भ मराठी आलोचक में दत्ता भगत जी के विचार इसप्रकार प्राप्त होते हैं -

'बंड, विद्रोह,प्रक्षोभ और नकार यह दलित साहित्य के बहुचर्चित, आशयगत, अनूठे तत्व यहाँ नहीं हैं।यहाँ रूढ़ अर्थ से उपयुक्त विशेषतायें न होते हुए भी परंपरा से किए गये अन्याय औरतों के दिल को छू लेते हैं। पाठक किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उद्देश्यों का बोझा लेखक ने अपने-आप पर लादकर नहीं लिया है। इसलिए ये यादें लक्षणीय हैं। पाठक को ये यादें जाने-अनजाने दलितों की वेदनाओं पर विचार करने के लिए प्रवृत्त करती हैं। (दलित साहित्य, दिशा आणि दिशांतर)।

डायरी शैली में लिखित माधव कोंडविलकर की आत्मचरित्र मुक्काम पोस्ट : देवाचे गोठणे सन 1979 में प्रकाशित हुआ, जिसमें सात-आठ सालों के जीवनसंदर्भो का रेखांकन किया गया है। इस आत्मकथा के प्रारंभ में उन्होंने लिखा है - स्वयं भोगे हुए अनुभूत जीवन को शब्दों का आधार लेकर उतारना शुरू किया। पहले कविताएँ रची, कथाएँ लिखी, पर उससे उनको समाधान नहीं मिला, मेरा अनुभव विश्व बहुत विशाल था, जिसे आत्मनिवेदन के अलावा दूसरा कोई पर्याय नहीं था।'

दलितों को अस्पृश्यता, अशिक्षा, अंधविश्वास के कारण बहुतसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। ऐसे अनेक प्रसंग इस आत्मकथा में उद्धृत किए गए हैं जैसे अस्पृश्य लोगों का साया बदनपर ना पड़ने पाए इसलिए औरतों का दूर से जाना (पृ. 55) दिन्या का चमारद्वारा बाल काटने पर नहाना, (पृ. 40) हरिद्वारा पत्नी के बदनपर से नारियल, उरद उतारकर फेंकना (पृ) गौरी (देवी) को मटन और दारू का नैवेद्य दिखाना, बभूती फूक कर काम करना, निंमी उतारना आदि इसप्रकार की अनिष्ट प्रथाएँ और अंधश्रद्धाएँ समाज में बहुतायत में प्रचलित हैं।

उनको खून-पसीना एक करने पर भी

इच्छानुसार खाना नहीं मिलता, पिताजी के शराब के व्यसन के कारण माँ बहुत असंतुष्ट रहती है - 'मी म्हन् ह्येच्या घरात दिवस काडलं, दूसरी बिसरी आस्ती तर घरात आग लावून कदीच गेली असती! लगन लागल्यापासून ह्या घरात मी हाल काढता. कदी अंगावर चांगला कपडा दिल्ला नाय का कोनाचा सुकाचा शब्द नाय' - जिसका हिन्दी भावानुवाद है - मैं ही हूँ जिसने इसके घर में इतने दिन बिताए हैं। दूसरी और कोई होती तो अब तक घर में आग लगाकर भाग गयी होती। मैं शादी के बाद इस घर में परेशानियाँ झेल रही हूँ। कभी पहनने को अच्छा कपड़ा मिला न सुख-चैन के दो बोल।"

दारू पीना, झगड़ा करना, मारना-पीटना, दंगा-मस्ती करना यह इस समाज में आम बात है। घर-घर में भी आपसी तनाव है, समाज की तो बात ही अलग है। अपनी व्यथा को लेखक इस आत्मकथा में इसप्रकार अभिव्यक्त करते हैं - 'मुझे अपना दुःख किसी से कहना है लेकिन इस गाँव में, मेरी जन्मभूमि में मेरे दुःख में समरस होनेवाला कोई नहीं है' (पृ.87)

उनको नौकरी में पंद्रह साल बिताने पर भी कभी सम्मान नहीं मिला ना ही किसीने उनकी ओर सहृदयतापूर्वक देखा। हमेशा उनके हिस्से में कटुता ही आयी। इससे भी बदतर वह क्षण उनके लिए होते हैं, जब कोई मनुष्य-मनुष्य को छूना गंदगी मानता है।

उनकी आत्मकथा के संदर्भ में सौ. उर्मिला औरादकर अपना मत अभिव्यक्त करती है - 'कोंडविलकर की आत्मकथा जीवन के विविध अनुभवों का एक आलेख है। कोंकण के लोग, रीतिरिवाज, रूढ़ी परंपरा, जातीयता अंधश्रद्धाओं का सटीक चित्रण किया है।'

श्री. लक्ष्मण माने जी ने 'उपरा' (25 दिसंबर 1980) आत्मकथा में भोगी हुई जीवनानुभूतियों को एक रेखाचित्रकार की भाँति हमारी आँखों के सामने सजीव रूप में पेश किया है।

भटकनेवाली जातियों के प्रश्नों पर सामाजिक मंथन शुरू हो जाने पर उन्हें लगा कि कैकाडी समाज के प्रश्नों को लोगों तक पहुँचाना चाहिए और इसीलिए उन्होंने पीढ़ियों से अपने संसार को पीठ पर लादकर चलनेवाले समाज की वेदनाओं को अभिव्यक्ति दी।

'उपरा' आत्मकथा में कैकाडी समाज का लोकजीवन विशेष रूप से अभिव्यक्त हुआ है। विभिन्न लोकाचार रूढ़ियों, लोकसंस्कृति के अंगों का वर्णन यहाँ मिलता है। विशेष रूप से अंधश्रद्धाओं और परंपरागत मान्यताओं का विदारक, वास्तव दर्शन इस आत्मकथा में होता है। ऐसी - ऐसी घटनायें यहाँ चित्रित हुई हैं जिसमें कभी-कभी मानव जीवन की असहायता तो कभी कभी उसमें कौर्य का संचार होता है।

इसप्रकार इन सभी आत्मकथाओं में दलित जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। इन में मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं बल्कि एक जानवर से भी बदतर माननेवाले समाज का चित्रण हुआ है। हर दिन होने वाले अत्याचारों से पीड़ित समाज, वेदनानुभूतियाँ और परेशानियाँ, दुःख का ही दूसरा नाम जैसे दलित महसूस होने लगता है। उत्तर आधुनिकता, बाजारवाद, भूमंडलिकरण आदि से साहित्य में रूबरू होने लगे हैं लेकिन इन दलितों की जीवनानुभूतियों से पीड़ित होकर, उनकों समझना पाठकों के लिए आवश्यक है।

✦ ✦ ✦